IJAER/March-April-2022/Volume-11/Issue-2 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

# अकबर के शासनकाल में धार्मिक नीति का स्वरूप तथा उद्देश्य

**Nikita Rani**,
M.A.History, (UGC-NET),
Assistant Professor,B.R.College Higher Education of Technology,Deoband, Maa Shakumbhari University, Saharanpur.
***Mail ID:nikitapundir0861@gmail.com***

## 1.1 प्रस्तावना

इतिहासकारों में अकबर की धार्मिक नीति के स्वरूप तथा प्रेरक उद्देश्य को लेकर भारी मतभेद हैं। विन्सेंट स्मिथ तथा के॰ ए॰ निज़ामी के मत में वह पैगंबर–शासक का रुतबा (पद) प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा था। उन्होंने अकबर के इस कार्य की भर्त्सना की है। दूसरी ओर अतहर अली आदि कुछ इतिहासकारों के अनुसार अकबर का उद्देश्य एक धर्म–निरपेक्ष राज्य की स्थापना करना था। एक अन्य मत के अनुसार, जिसके प्रतिपादक मुख्यताः आई0 एच0 कुरैशी हैं, अकबर परम्परावादी इस्लाम का उत्पीड़न कर रहा था, जबकि इक़्तिदार आलम खाँ के अनुसार अकबर की धार्मिक नीति का उद्देश्य अभिजात प्रशासक वर्ग में, जिसका गठन विभिन्न जातियों, वर्गों तथा धर्मों के लोगों द्वारा हुआ था, संतुलन पैदा करना था। अकबर के व्यक्तिगत धार्मिक विचार क्या थे और उन्होंने अकबर की धार्मिक नीति को किस हद तक प्रभावित किया, इस विषय पर भी भारी मतभेद हैं, अकबर की धार्मिक नीति की समीक्षा के लिए हमें उसका अध्ययन एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में करना चाहिए।[1]

वस्तुतः अकबर ने सम्प्रभुता के ऐसे सिद्धान्त की स्थापना का प्रयास किया जिसमें भारत की धार्मिक तथा जातिगत विषमताओं का पूरा ध्यान रखा गया था ताकि मुगल साम्राज्य को एक सुदृढ़ आधार मिले। उस युग में जबकि धर्म और जाति को अलग–अलग रखना प्रायः असम्भव था, अकबर द्वारा प्रतिपादित सम्प्रभुता सिद्धान्त को केवल राजनीति या धार्मिक उद्देश्य से ही प्रेरित नहीं माना जा सकता। उसमें धर्म और राजनीति–दोनों के ही तत्व विद्यमान हैं। जिनको अलग–अलग करके नहीं देखा जा सकता। किन्तु उल्लेखनीय बात यह है कि अकबर धार्मिक, राजनीतिक आदर्शों से अनुप्रेरित संप्रभुता सिद्धान्त को, जिसको व्यवहार की कसौटी पर कसा गया था, धर्मनिरपेक्ष राज्य के आदर्श से सम्बद्ध करने में सफल रहा जहाँ हर व्यक्ति को अपने धर्म–पालन की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। अकबर की धार्मिक विचारधारा के निर्धारण के विभिन्न चरण हैं जिनके विधिवत अध्ययन से उसके उद्देश्य सुस्पष्ट हो जाते हैं।[2]

## 1.2 प्रथम चरण (1562–1574)

अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में अकबर ने ऐसी कई उदारवादी नीतियाँ अपनाईं जिन्हें मुगल साम्राज्य को एक नवीन सैद्धान्तिक आधान प्रदान करने की दिशा में प्रथम आयाम माना जा सकता है। उसने युद्ध में मारे गए या बंदी बनाए गए व्यक्तियों के परिवारों को दास बनाए जाने की प्रथा समाप्त कर दी। इस सन्दर्भ में अबुल फ़ज़ल का कथन है : यदि पति धृष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं तो इसमें पत्नियों का क्या दोष? इसी

[1] इलियट एण्ड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन, जिल्द–7, लंदन, 1887, पुनः मुद्रण, किताब महल, इलाहाबाद, 1964, पृ0 179

[2] A. S. Altekar, "A History of Village Communities in Western Indian, Madras, 1927

प्रकार यदि पिता विरोध का मार्ग अपनाते हैं तो इसमें बच्चों का क्या दोष है? यही नहीं, ऐसे लोगों की पत्नियाँ तथा भोले–भाले बच्चे युद्ध की सामग्री का हिस्सा नहीं हैं।

अगस्त 1563 में अकबर ने साम्राज्य के विभिन्न तीर्थस्थानों में तीर्थ यात्रियों से लिए जाने वाले कर की वसूली बंद कर दी। अबुल फ़ज़्ल का कहना है कि इस कर से साम्राज्य को प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ की आय होती थी। उसके विवरण के अनुसार अकबर ने अपने कार्य को इस प्रकार उचित ठहराया : "यद्यपि किसी सम्प्रदाय–विशेष में ज्ञानाभाव स्पष्ट रूप से दिखई पड़ता है, किन्तु उस सम्प्रदाय–विशेष के अनुयायियों से जिन्हें यह एहसास ही नहीं कि वे गलत राह पर जा रहे हैं, पैसा वसूल करना तथा इस प्रकार अद्वैत के अलौकिक प्रवेश द्वार के मार्ग में, जो उन्होंने अपनी समझ–बूझ के अनुसार अपनाया है तथा जिसे वे कर्ता की उपासना का माध्यम समझते हैं, रोड़ा अटकाने के कार्य को विवेकसम्मत बुद्धिजीवियों ने नापसंद किया है तथा इसको ईश्वर की इच्छा का पालन न करने का चिह्न समझा है।"[3]

अकबर द्वारा जजिया कर समाप्त करने की तिथि के विषय में कुछ संशय है। जजिया मुस्लिम राज्य में रहने वाली गैर–मुस्लिम प्रजा से लिया जाने वाला व्यक्ति कर है। अबुल फ़ज़्ल ने इसकी समाप्ति की तिथि मार्च 1564 बताई है। उसका कहना है कि पहले के शासक इस कर को अन्य धर्मों को शक्तिहीन बनाने तथा उसके प्रति अपनी घृणा प्रदर्शित करने का एक साधन समझते थे। किन्तु अकबर धर्मों के मध्य भेदभाव नहीं करता था व उसे अतिरिक्त राजस्व की भी आवश्यकता नहीं थी। इसलिए उसने इस कर को समाप्त कर दिया। किन्तु बदायूँनी ने जजिया की समाप्ति का साल 1579 ई॰ बताया है। वह इस विषय में कोई विशेष विवरण नहीं देता।

### 1.3 द्वितीय चरण (1575–1579)

अकबर के धार्मिक सिद्धान्तों के विकास का दूसरा आयाम 1575 ई॰ में इबादतखाना की स्थापना से प्रारम्भ होता है जो धार्मिक विषयों पर वाद–विवाद के उद्देश्य से बनवाया गया था। पिछले दशक में मुग़ल साम्राज्य के प्रभुत्व की स्थापना में आश्चर्यजनक सफलता मिलने के कारण अकबर यह विश्वास करने लगा था कि उसे दैवी अनुकंपा विशेष रूप से प्राप्त है जिसके कारण धार्मिक विषयों के प्रति उसकी स्वाभाविक जिज्ञासा जाग्रत होने लगी थी। बदायूँनी का कथन है "पादशाह को कई वर्षों तक युद्धों में उल्लेखनीय व अपार सफलता प्राप्त होती रही थी। साम्राज्य के स्वरूप में दिन–प्रतिदिन विस्तार हो रहा था।..... (पादशाह) अब अपना समय "ईश्वर के वचन" व "पैगंबर के वचनों" की चर्चा में व्यतीत करते थे। पादशाह सलामत की रूचि सूफी मत से सम्बन्धित प्रश्नों, विद्वतापूर्ण चर्चा, दर्शन तथा फ़िक्ह की गूढ़ताओं के विषय में जिज्ञासा–समाधान आदि में अधिकाधिक बढ़ती जा रही थी। अपनी अतीतकालीन सफलताओं के लिए कृतज्ञता की भावना से द्रवित होकर वह सुबह के समय घंटों प्रार्थना व चिंतन में अपना समय व्यतीत करता था। अकबर ने वाद–विवाद के दौरान स्वयं यह उद्देश्य व्यक्त किया था "हे ज्ञानियों तथा मुल्लाओं, मेरा एकमात्र उद्देश्य सत्य की जाँच करना तथा वास्तविकता का पता लगाना है, (अतः) आपको सत्य को छुपाना नहीं चाहिए और न ही अपनी मानवीय कमजोरियों के प्रभाववश ऐसी कोई बात करनी चाहिए जो सत्य के विपरीत

[3] Bemard S. Cohn, "Political Systems in Eighteenth Century India" Journal of the American Oriental Society, 1962.

हो। अगर आप ऐसा करेंगे तो आप अपनी कर्तव्य–शून्यता के परिणामों के लिए ईश्वर के सम्मुख स्वयं उत्तरदायी होंगे।"[4]

इबादतखाने में होने वाले वाद–विवादों के विषय विविध प्रकार के थे। यहाँ तक कि वहाँ ऐसे विषयों पर भी विचार होता था कि किसी व्यक्ति को कानूनी तौर पर कितने विवाह करने का अधिकार है। इस प्रकार के विषयों की समीक्षा, जो उस समय के हिसाब से आश्चर्यजनक थी, अकबर को अत्यन्त रूचिकर लगती थी। शुरू में वाद–विवाद केवल सुन्नी मत के इर्द–गिर्द तथा उसके अनुयायियों तक ही सीमित था किन्तु बाद में शिया मत के अनुसायी मुल्लाओं को भी वाद–विवाद में शामिल होने का मौका मिलने लगा। बाद में भारतीय भौतिकवादी दार्शनिक तथा संशयवादियों, ईसाइयों, यहूदियों तथा ज़ोरास्त्रियों आदि के लिए भी इबादतखाने के द्वार खोल दिए गए।

वाद–विवाद में अबुल फ़ज़ल की प्रमुख भूमिका थी। परम्परावादी सुन्नी उलमा के विपक्ष में विभिन्न वर्गों को सक्रिय करने का कार्य उसी का था। वह बहुत से विषयों पर उलमा की संकीर्णता तथा अज्ञान की भांडा फोड़ता था। इबादतखाने में होने वाले वाद–विवाद ने अकबर के धार्मिक विचारों के विकास में गहरी भूमिका निबाही।

उलमा वर्ग में हदीस की व्याख्या को लेकर ही मतभेद नहीं था, वरन् कुरान की आयतों की व्याख्या के सम्बन्ध में भी उनके विचारों में समानता नहीं थी। इस बात पर अकबर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा "यह बड़े आश्चर्य की बात है कि हमारे पैगम्बर के समय कुरान की टीका नहीं लिखी गई जिससे बाद के काल में विचार–विभेद की संभावना ही न रहती।" अकबर के उदार विचारों को देखते हुए यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि दूसरे धर्मानुयायियों के प्रति उलमा के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार से अकबर को बड़ी विरक्ति हुई होगी। वाद–विवाद के मध्य अपने निजी धर्म की बहुत सी बातों के सम्बन्ध में उनकी अज्ञानता का पर्दाफाश हो जाता था जिससे अकबर का और भी भ्रम–निवारण हुआ होगा।[5]

वाद–विवाद का दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि अकबर की दृढ़ धारणा बन गई कि ज्ञानी पुरूष सभी धर्मों में पाए जाते हैं तथा यह भी सत्य किसी एक धर्म की व विशेषकर इस्लाम की बपौती नहीं है जिसका अबुल फ़ज़ल के शब्दों में "प्रादुर्भाव हुए विशेष समय नहीं हुअ तथा 1000 वर्ष भी पूरे नहीं किए थे।"

महज़र (1579 ई॰) इबादतखाने में होने वाले वाद–विवाद के द्वारा न केवल अकबर का भ्रम–निवारण हुआ, अपितु राज्य के नीति–संचालन में इस वर्ग के प्रभाव के बारे में भी वह सचेत हो गया। इस काल में राज्य में मख़्दूम उल–मुल्क, अब्दुल्ल सुल्तान पुरी तथा शेख़ अब्दुन नबी का प्रभाव विशेष रूप से था। शेख़ अब्दुन नबी की अकबर ने 1561–1562 में सदर उस् सुदूर के पद पर नियुक्ति की थी। इस पद पर होने के कारण सभी धार्मिक अनुदानों के विषय में उसका निर्णय सर्वोपरि था व इस कारण उसकी शक्ति व प्रतिष्ठा अत्यन्त बढ़ी–चढ़ी थी। 1575–1576 में एक हुकुम जारी किया गया जिसके अनुसार जब तक मदद–ए–माश, वक्फ तथा अदरार (धार्मिक तथा खैराती उद्देश्यों के लिए दिया जाने वाला भू–अनुदान) फरमानों की सदर उस् सुदूर के हस्ताक्षरों द्वरा शिनाख्त नहीं होगी, उन्हें राजस्व अधिकारियों (करोड़ी) द्वारा स्वीकार नहीं किया जाएगा। इसका अर्थ यह था कि अनुदान अधिग्राहियों को राजधानी आना व सदर उस् सुदूर से मिलना

[4] Basil Gray, "Rajput Painting, London", 1948
[5] B. K. Goswami, "Indian Painters of the Pubjab Hills", Journal of Royal Society of Arts, 1968

आवश्यक हो गया तथा वे अपने दावों को केवल रिश्वत और प्रभावपूर्ण सम्बन्धों के बल पर ही प्राप्त कर सकते थे।

अकबर द्वारा धीरे–धीरे अपने हाथों में सत्ता को केन्द्रित करने एवं हिन्दू व अन्य गैर–मुस्लिम धर्मावलम्बियों का समर्थन प्राप्त करके मुग़ल राज्य को सुदृढ़ आधार प्रदान करने के प्रयासों के कारण राजनीति में उलमा की शक्ति में कटौती होना स्वाभाविक ही था। अब्दुल नबी द्वारा एक ब्राह्मण को पैगम्बर का तिरस्कार करने के अपराध में मृत्युदण्ड दिए जाने की घटना ने पादशाह तथा धर्मशास्त्रियों के मध्य के तनावों को और भी तीव्र बना दिया। यद्यपि अकबर ने स्पष्ट रूप से वध की मनाही नहीं की किन्तु उसने सम्भवतः यह जाहिर कर दिया कि ब्राह्मणों को इतनी भारी सजा नहीं मिलनी चाहिए थी। इस घटना से लगता कि सदर उस् सुदूर की कार्यवाही को उसने उलमा द्वारा अपनी सत्ता के प्रति स्पष्ट चुनौती समझा। ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर ने उसी समय यह निश्चय कर लिया कि उलमा के प्रभाव को समाप्त करने का एकमात्र उपाय यह था कि वह सर्वोच्च आध्यात्मिक तथा भौतिक शक्तियों को इस्लाम द्वारा अनुमोदित दायरे के अन्तर्गत स्वयं में केन्द्रित करे। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि इस समय तक अकबर ने उन सिद्धान्तों का विकास नहीं हुआ था जो इस्लाम के दायरे से परे हों अर्थात् उनमें अन्य सभी धर्मों का विचार शामिल नहीं था। किन्तु 1579 की दो महत्वपूर्ण कार्यवाहियाँ अकबर के नवीन उद्देश्यों का प्रतीक बन कर आईं। इबादतखाने में बहस के दौरान यह जिक्र आया कि प्रथम चार ख़लीफ़ा जुम्मे की नमाज़ के समय स्वयं खुतबा पढ़ते थे। तैमूर के बारे में भी ऐसा ही पाया गया जिसको मुग़ल अपना पूर्वज मानने में गर्व महसूस करते थे। इन पूर्व–उदाहरणों से प्रेरित होकर अकबर ने 26 जून 1579 में फ़तेहपुर सीकरी की जामा मस्जिद में स्वयं खुतबा पढ़ने का साहस दिखाया। इसी दौरान उसने इस तथ्य पर भी बल दिया कि उसने अर्थात् पादशाह ने अपनी सत्ता ईश्वर से प्राप्त की है। यद्यपि अकबर द्वारा किसी अन्य अवसर पर खुतबा पढ़े जाने का कोई सन्दर्भ नहीं मिलता किन्तु खुतबा पढ़ने की कार्यवाही का अति महत्व है क्योंकि इसके द्वारा अकबर ने उलमा को अपनी शक्ति के अधीन करने का दृढ़ संकल्प प्रकट कर दिया था।

अकबर द्वारा धार्मिक व भौतिक सत्ता को अपने हाथों में केन्द्रित करने का विधिवत कार्य अगस्त–सितम्बर 1579 में महज़र नामक दस्तावेज द्वारा हुआ। महज़र जारी करने की प्रेरणा शेख़ मुबारक तथा उसके पुत्र फ़ैज़ी व अबुल फ़ज़ल द्वारा दी गई थी। उलमा ने इन पर महदवी व शिया होने का आरोप लगाकर उनका उत्पीड़न किया था। वे उलमा की शक्ति में कटौती करने का मौका पाकर खुश थे। शेख़ मुबारक ने अकबर से कहा, "पादशाह सलामत इस दौर के इमाम तथा मुज्तहिद (जो शरअ की व्याख्या करने में सक्षम हो) हैं। आपको धार्मिक तथा धर्मेतर विषयों में इन उलमा की सहायता की क्या आवश्यकता है?" महज़र ने अकबर को यह अधिकार दिया कि उलमा में किसी विषय पर मतभेद होने की दशा में वह साम्राज्य की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए किसी एक विचार को, जिसे वह सर्वोत्तम समझें, मान्यता दे सकता है। अकबर को रिआया (प्रजा) की भलाई के लिए कोई भी फरमान जारी करने का अधिकार दिया गया बशर्ते की उसमें कुरान के कानूनों का उल्लंघन न हो। पादशाह को सुल्ताने आदिल (न्यायप्रिय शासक) की उपाधि देकर उन सभी कार्यवाहियों को वैधता प्रदान की गई। बदायूँनी के अनुसार प्रमुख उलमा को महज़र पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया गया। इसमें केवल शेख़ मुबारक ही अपवाद था जिसने सहर्ष इस दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए।

महज़र की व्याख्या के सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों में व्यापक मतभेद हैं। विन्सेंट स्मिथ के अनुसार अकबर ने पश्चिमी यूरोप में पोप की स्थिति से प्रेरित होकर महज़र जारी किया था। एफ0 डब्ल्यु0 बक्लर के अनुसार महज़र जारी करने का उद्देश्य यह था कि अकबर ईरान के राजनीतिक व धार्मिक प्रभाव तथा उस्मानी

ख़लीफाओं के प्रति निष्ठा–प्रदर्शन के मुक्ति चाहता था ताकि इस्लाम प्रधान देशों में उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हो। आई0 एच0 कुरैशी महज़र के सम्बन्ध में अकबर की आलोचना करते हैं। उनके अनुसार यह सुस्पष्ट अधिकार–पत्र व कुटिल दस्तावेज था जिसने अकबर को परम्परागत इस्लाम से विरोध करने तथा धर्म–द्रोहियों के पक्ष में मध्यस्थता करने का अवसर प्रदान किया। दूसरी और एस0 एम0 इकराम के अनुसार महज़र भारतीय–मुस्लिम कानून के विकास के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण आयाम था। ए0 एल0 श्रीवास्तव के शब्दों में इसने मुस्लिम कानून को स्थानापन्न करने का मार्ग प्रशस्त किया। सैयद ए0 ए0 रिज़वी के मत में "महज़र का उद्देश्य उन सभी विषयों को, जो अकबर की हिन्दू–मुस्लिम प्रजा से सम्बन्धित थे, पादशाह के प्रत्यक्ष नियंत्रण में लाना था।" उपर्युक्त मतों की अपेक्षा एस0 ए0 ए0 रिज़वी का मत अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। हालांकि वे इस सम्बन्धित तथ्य को स्वीकार नहीं करते कि अकबर ने इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए ही धार्मिक व भौतिक शक्तियाँ अपने हाथ में समन्वित करने का कार्य किया था और महज़र व खुतबा उसका प्रतीक मात्र था। महज़र ने अकबर को अमीर उल् मोमिनीन (मोमिन अर्थात् इस्लाम में विश्वास रखने वालों का नायक) कहा गया है। इस प्रकार के संबोधन उमय्यद तथा अब्बासी ख़लीफाओं के दस्तावेजों में प्रयुक्त हुए हैं यद्यपि उनको अधिकांशतः ख़लीफ़ा कहकर ही पुकारा गया है। यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि 1258 के बाद मुस्लिम शासकों ने ख़लीफ़ा की पदवी तो धारण की किन्तु उन्होंने स्वयं का अमीर उल् मोमिनीन कभी नहीं कहा। अकबर द्वारा महज़र में इस पद–संज्ञा का प्रयोग इस तथ्य का स्पष्ट परिचायक है कि आरम्भिक ख़लीफ़ाओं के समान ही वह भी सर्वोच्च आध्यात्मिक व भौतिक सत्ता प्राप्त करना चाहता था। वह स्वयं को शरअ को लागू करने वाले शासक की हैसियत तक ही सीमित नहीं रखना चाहता था।[6]

### 1.4 अंतिम चरण (1579–1605)

1579 के वर्ष की घटनाएँ अकबर के इस्लाम द्वारा अनुमोदित दायरे के अन्तर्गत अपने हाथों में आध्यात्मिक व लौकिक शक्ति से सन्निहित करने के निश्चय की परिचायक थीं। इस कार्य से कट्टरपंथी सुन्नी उलमा की शक्तियाँ प्रतिबंधित हुईं किन्तु विभिन्न प्रकार की जातियों तथा धार्मिक वर्गों की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं के अनुरूप मुग़ल साम्राज्य को सैद्धान्तिक आधार दिए जाने की समस्या अभी भी बाकी थी। लगता है कि अकबर इस समस्या के प्रति सदैव जागरूक रहा था तथा 1579 के बाद के काल में मुग़ल साम्राज्य के लिए उसने उदार सैद्धान्तिक आधार तैयार करने का कार्य सम्पन्न किया। इस कार्य में अबुल फ़ज़ल ने प्रमुख भूमिका निभाई। उसने अकबर की मुग़ल साम्राज्य की सैद्धान्तिक आधार सम्बन्धी अवधारणा को भली–भाँति समझ लिया था तथा उसे एक विस्तृत व जटिल विचार पद्धति में ढाल दिया। आईने अकबरी तथा अकबरनामा इस विचार पद्धति की विवेचना की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे इस्लाम के विकल्प का प्रतिनिधित्व करते हैं।

एस0 ए0 ए0 रिज़वी के अनुसार अबुल फ़ज़ल ने कुछ प्रमुख विचार सूफियों के प्रकाशमयता के सिद्धान्त से ग्रहण किए हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर से प्रकाश का उद्भव होता है, जीवन उस प्रकाश की प्राप्ति का ही नाम है। प्रकाश जितना शुद्धतर होगा, जीवन का स्तर उतना ही उच्च होगा। इन्हीं विचारों के आधार पर अबुल फ़ज़ल ने यह विचार प्रतिपादित किया कि सम्प्रभुता ईश्वर से विकीर्ण होने वाला विशिष्ट प्रकाश है। **आईने अकबरी** के प्राक्कथन में उसने लिखा है :

"सम्प्रभुता का उद्भव उस अतुलनीय न्याय वितरक से है..... तथा यह सूर्य की एक किरण है जो सम्पूर्ण ब्रह्मांड को प्रकाशित करने में सक्षम है। यह सम्पूर्ण गुणों का आधार है। समसामयिक भाषा में उसे

[6] B. R. Grover, "Nature of Land Rights in Mughal India", IESHR, I, 1963

फ़र्र–ए–ईज़िदी (दैवीय ज्योतिपुंज) कहा जाता है जबकि प्राचीन भाषा में इसे कियान खूरा (अलौकिक प्रकाश मंडल) कहा गया। यह ईश्वर द्वारा पवित्र–मुख (पादशाह) को प्रदान किया जाता है व इस कार्य में किसी मध्यस्थ की सहायता की आवश्यकता नहीं होती तथा उसकी उपस्थिति में लोग अपनी प्रशंसा का माथा विनयशीलता की धरती पर झुकाते हैं। इस प्रकाश पर अधिकार होने पर बहुत से उच्च कोटि के गुणों का अनुभव होता है।"[7]

अबुल फ़ज़ल का मानना है कि सम्प्रभुता का प्रकाश शासक की कई पुश्तों में संचारित हुआ और उसकी अकबर में चरम परिणति हुई। अकबर को संप्रभुता की पवित्र एवं पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदर्शित करने के लिए अबुल फ़ज़ल ने एक अन्य सूफी सिद्धान्त अल इन्सान अल कामिल (पूर्ण पुरूष) का सहारा लिया जिसका प्रणेता इब्न अल् अरबी (मृ॰ 1240 ई॰) था। इस प्रकार के व्यक्तित्व को ब्रह्मांड का सूक्ष्म रूप माना गया है। वह शुद्ध आध्यात्मिक विचारों का एकीकृत रूप है जिसमें वास्तविकता का उद्भव होता है तथा यह व्यक्ति के ज्ञान का साकार रूप है। अबुल फ़ज़ल का विचार था कि अकबर के व्यक्तित्व में पूर्ण पुरूष व प्रशासक के सभी गुण सन्निहित थे जिसके कारण वह सामान्य मुस्लिम शासकों की अपेक्षा एक विशिष्ट व्यक्तित्व का धनी था। अबुल फ़ज़ल के भाई फैज़ी ने अकबर के बारे में लिखा "यद्यपि पादशाह भूमि पर ईश्वर की प्रतिच्छाया (ज़िल्ले–इलाही) होते हैं, उसमें (अकबर में) ईश्वरीय प्रकाश का उद्भव हुआ है। ऐसी दशा में उसे ईश्वर की प्रतिच्छाया कैसे माना जा सकता है?" अबुल फ़ज़ल के अनुसार अकबर में सम्प्रभुता के प्रकाश की परिपक्वता के कारण विश्व के इतिहास में एक नए अध्याय का सूत्रपात हुआ है। इस प्रकार अकबर युग पुरूष (साहिब–ए–ज़माना) है जो सभी प्रकार के वैमनस्यों की समाप्ति करने में समर्थ है।

चूँकि अकबर में सम्प्रभुता की परिणति हुई थी, इसलिए अबुल फ़ज़ल ने उसको बहुत से गुणों का धारक माना, जैसे ज्ञानशीलता, दूसरों के अज्ञान तथा अपूर्णता के प्रति धैर्यशीलता, न्यायप्रियता, प्रजावत्सलता, उदार हृदयता (इसमें निष्पक्ष न्याय का संचालन भी शामिल था,) ईश्वर के प्रति निरंतर प्रेम में वृद्धि तथा उपासना व आस्था आदि। शासक (अकबर) की प्रजावत्सलता के गुण के कारण उसकी प्रजा निश्चिन्तता से रहती थी। एक सामान्य शासक के समान अकबर ने भी बहुत से ऐसे तथ्यों को महत्व दिया, जैसे "विपुल खजाना, विशाल सेना, चतुर सेवक, आज्ञाकारी प्रजा, विद्वान, बड़ी संख्या में कुशल कारीगर तथा आनंद के साधनों की भरमार।" किन्तु जैसा कि अबुल फ़ज़ल का कथन है : "अकबर में ऐश्वर्य के उपुर्यक्त साधनों पर अधिकार रखने की क्षमता एक सामान्य शासक की अपेक्षा कहीं अधिक थी।" यद्यपि इन उपकरणों में उसकी आसक्ति सामान्य लोगों की अपेक्षा कहीं कम थी, इन सबको वह लोगों के उत्पीड़न के अन्त तथा कल्याण का साधन समझता था।

**तौहीदे इलाही :** अबुल फ़ज़ल की सैद्धान्तिक योजना में अकबर को एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया था जो साम्प्रदायिक दायरों से परे था। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं अकबर ने अपने धार्मिक विचारों (जिनको बाद के काल में अबुल फ़ज़ल द्वारा प्रभावित किए जाने की सम्भावना है) का भी अंततः यही निष्कर्ष निकाला होगा। उसके धार्मिक विचारों के निरूपण में सूफी मत व सर्वेश्वरवाद का गहरा प्रभाव था। सूफी सर्वेश्वरवाद से सम्बन्धित दो क्लासिकी ग्रंथ, जलालुद्दीन रूमी का **मस्नवी** तथा हाफ़िज का **दीवान**, अकबर की मनपसंद पुस्तकों में से थे। सूफी मत के प्रति अकबर की आस्था का पता इस बात से चलता है कि उसने चिश्ती को प्रश्रय दिया था। 1562–1579 के मध्य के काल में उसने अजमेर के ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की अनेकों बार जियारत की थी। उसकी शेख़ सलीम चिश्ती के प्रति भी गहरी आस्था थी जिसके

[7] Chetan Singh, "Region and Empire : Punjab in the Seventeenth Century," Delhi, 1991

नाम पर उसने अपने पुत्र (भावी जहाँगीर) का नाम सलीम रखा था। उसके बाद में फतेहपुर सीकरी में एक दरगाह का भी निर्माण करवाया था।[8]

अकबर के सूफी धर्म के प्रति झुकाव ने ही विश्व के प्रति एक विशद् व उदार दृष्टिकोण अपनाने को प्रेरित किया। अकबर का यह विचार 1575 के बाद से इबादतखाने में होने वाले वाद–विवाद के कारण और भी परिपक्व होता गया। वाद–विवाद के दौरान एक ओर कट्टरपंथी सुन्नी उलमा की धर्मांधता सामने आई व उनमें विविध विषयों के बारे में गहरा मतभेद होने के कारण विभ्रम की स्थिति भी स्पष्ट हुई। दूसरी ओर इन वाद–विवादों ने उसका यह विश्वास पक्का कर दिया कि विद्वान पुरूष सभी धर्मों में पाए जाते हैं तथा यी भी कि सत्य केवल इस्लाम धर्म की थाती नहीं है। इसी सहिष्णु दृष्टिकोण का एक प्रतिरूप अकबर की आध्यात्मिक एवं भौतिक अर्थों में अपने श्रेष्ठ व्यक्तित्व के प्रति जागरूकता भी थी। इसके लिए बहुत से तथ्य उत्तरदायी थे। जैसा कि बदायूँनी की पूर्वोक्त पंक्तियों से ज्ञात होता है कि भारत में एक सशक्त मुग़ल साम्राज्य की स्थापना में अकबर की आश्चर्यजनक सफलता के पश्चात् अकबर की धार्मिक व आध्यात्मिक विषयों में रूचि बढ़ी तथा धीरे–धीरे वह स्वयं को दैवी शक्ति के ग्राही के रूप में देखने लगा। इस प्रकार का दृष्टिकोण शिकार–अभियान के दौरान होने वाले हाल (सूफियों की आनन्द–अतिरेक की अवस्था) से और भी पुष्ट हुआ होगा। अबुल फ़ज़ल के साहिबे ज़माना (युग–पुरूष) की परिकल्पना में अकबर के व्यक्तिगत विचारों तथा अबुल फ़ज़ल के ज्ञान का समावेश हुआ है। यह विभिन्न धर्मों के मध्य शांति व सद्भावना स्थापित करने के लिए था।

## 1.5 निष्कर्ष

अकबर की निजी विचार–पद्धति तौहीदे इलाही (दैवी एकेश्वरवाद) के निरूपण में योग दिया। अकबर के विचारों का मुख्य आधार यह था कि सभी धार्मिक विषयों में अनुकरण (तकलीद) की अपेक्षा तर्क (अक्ल) का अधिक महत्व है। उसका विश्वास था कि आस्था तथा आचरण में अन्तर के कारण ही सभी धर्मों में भ्रामक विभिन्नताएँ पैदा हो गई हैं। इसीलिए उसने हिन्दुओं की मूर्ति पूजा तथा मुस्लिमों के उपासना के तरीकों की आलोचना की थी। अकबर का विचार एक ऐसी उपासना पद्धति का निर्धारण करना था जो कट्टरपंथी इस्लाम तथा हिन्दू धर्म की पद्धतियों से भिन्न हो। सूफियों के समान ही उसका विश्वास था कि ईश्वर की उपासना विभिन्न लोगों द्वारा अपनी ज्ञान–क्षमता के अनुरूप की जाती है। ईश्वर की कोई आकृति नहीं है तथा अत्यधिक मानसिक चिंतन के द्वारा ही उसको ईश्वर का बोध हो सकता है। उपासना में शारीरिक क्रिया केवल अज्ञानियों द्वारा ही अनुकरणीय है। वस्तुतः उपासना मन से ही की जानी चाहिए। इसीलिए अकबर ने यह विचार प्रकट किया था कि "ईश्वर की उपासना का सबसे सच्चा मार्ग एक ऐसे जागरूक हृदय का अधिकारी होना है जो प्रकाश से प्रेम करता है।"

अकबर द्वारा प्रकाश को महत्ता दिए जाने के कारण सर्वेश्वरवाद विषयक यह विश्वास था कि सभी परिवर्तनों के मूल में वास्तविकता व अटल सत्य एक ही है तथा प्रकाश उस अपरिवर्तनीय वास्तविकता की शुद्धमत व आकारहीन अभिव्यक्ति है। इसीलिए अकबर ने प्रकाश के स्रोत सूर्य को इतना महत्व दिया। अकबर के विचारों पर प्राचीन ईरानी परम्परा के नौरोज़ उत्सव का भी प्रभाव पड़ा था जिसमें सूर्य और रोशनी की उपासना शामिल थी।

[8] D. E. Streusand, "The Formation of the Mughal Empire", Delhi, 1989

अकबर का विश्वास था कि ईश्वर और पार्थिक जीवों के मध्य गहरा सम्बन्ध है व यह कि शासक के रूप में उसका ईश्वर से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है अर्थात् इस सम्बन्ध की स्थापना में धर्म रूपी माध्यम की आवश्यकता नहीं है। अबुल फ़ज़ल द्वारा सम्प्रभुता की दैवी प्रकाश से तुलना किए जाने के विषय में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। अकबर का विश्वास था कि पादशाह के दर्शन करना ईश्वर की उपासना करने के तुल्य है जबकि पादशाह के लिए न्याय करना तथा सांसारिक विषयों का संचालन ही वास्तविक उपासना है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


- इलियट एण्ड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन, जिल्द–7, लंदन, 1887, पुनः मुद्रण, किताब महल, इलाहाबाद, 1964, पृ0 179
- S. Altekar, "A History of Village Communities in Western Indian, Madras, 1927
- Bemard S. Cohn, "Political Systems in Eighteenth Century India" Journal of the American Oriental Society, 1962.
- Basil Gray, "Rajput Painting, London", 1948
- K. Goswami, "Indian Painters of the Pubjab Hills", Journal of Royal Society of Arts, 1968
- R. Grover, "Nature of Land Rights in Mughal India", IESHR, I, 1963
- Chetan Singh, "Region and Empire : Punjab in the Seventeenth Century," Delhi, 1991
- E. Streusand, "The Formation of the Mughal Empire", Delhi, 1989
- S. Richards (ed.) "Islam and the Trade of Asia", Oxford, 1970